।।श्रीराधाकृष्णाभ्यां नमः।।

शुभ दीपावली (२०१७)

दीपावली के अवसर पर चौपड़ (जुआ) खेलने की प्राचीन परम्परा भारत में चली आ रही है। खेलों में इसे अत्यन्त निकृष्ट समझा जाता है क्योंकि इस खेल में मनुष्य बहुधा अपना सर्वस्व भी हार जाता है। श्रीमद्भगवद्गीता के १०वें अध्याय के श्लोक सं० ३६ में भगवान् ने घोषणा की है - ***"द्यूतं छलयतामस्मि..."*** अर्थात् *'छलने वालों में द्यूत (जुआ) मैं ही हूँ'*। द्यूत-क्रीड़ा को अपनी विभूति बताकर भगवान् इस खेल को महिमामण्डित नहीं कर रहे हैं अपितु अपनी उस शक्ति की ओर इंगित कर रहे हैं जिसके वश में होकर एक क्षण में मनुष्य अपना सर्वस्व अर्थात् देह भाव को हार जाता है। वास्तव में भगवत्प्रेम हुए बिना सांसारिक विषयों की ओर से वैराग्य होना असम्भव है। भगवत्प्रेम प्राप्ति का सुगम साधन है - 'निरंतर भगवन्नाम का आश्रय'। भक्तप्रवर श्री सूरदासजी ने आगामी पद में उस 'दिव्य चौपड़' का अत्यन्त मार्मिक वर्णन किया है, जिसको खेलकर मनुष्य के हृदय में वैराग्य व भगवत्प्रेम का बीज अंकुरित हो जाता है।

इस दीपावली के मंगल पर्व पर हम सब भी इस दिव्य चौपड़ में भाग लेकर अपनी सारी सांसारिक आसक्तियों व विषयानुराग को दाव पर लगा दें। ऐसा कर अपने अमूल्य मानव-जीवन में भगवत्प्रेम व भगवन्नाम रूपी दीपक प्रज्वलित करें।

दिव्य चौपड़

चौपरि जगत मड़े जुग बीते।
गुन पाँसे, क्रम अंक, चारि गति, सारि न कबहूँ जीते।।
चारि पसार दिसानि, मनोरथ घर, फिरि फिरि गिनि आनै।
काम-क्रोध-मद-संग मूढ़ मन खेलत हार न मानै।।
बाल-बिनोद बचन हित, अनहित बार-बार मुख भाखै।
मानौ बग बगदाइ प्रथम दिसि आठ-सात-दस नाखै।।
षोड़स जुक्ति, जुबति चित षोड़स षोड़स बरस निहारै।
षोड़सअंगनि मिलि प्रजंक पै छ-दस अंक फिरि डारै।।
पंद्रह पित्र-काज, चौदह दस-चारि पठे, सर साँधे।
तेरह रतन कनक रूचि द्वादस अटन जरा जग बाँधे।।
नहिं रूचि पंथ, पयादि डरनि छकि पंच एकादस ठानै।
नौ दस आठ प्रकृति तृष्ना सुख सदन सात संधानै।।
पंजा पंच प्रपंच नारि-पर भजत, सारि फिरि मारी।
चौक चबाउ भरे दुबिधा छकि रस रसना रूचि धारी।।
बाल, किसोर, तरून, जर, जुग सो सुपक सारि ढिग ढारी।
सूर एक पौ नाम बिना नर फिरि फिरि बाजी हारी।।

अर्थ- *संसाररूपी चौपड़ को बिछाये हुए युग बीत गये (अनादिकाल से जीव संसारचक्र में पड़ा है)। त्रिगुण (सत्त्व, रज, तम) के पासों से, कर्म के अङ्कों से, चारों गति (बाल्य, कैशोर, यौवन एवं वार्धक्य) से कभी भी 'सारि' (गोटी) जीती नहीं गयी (कभी भी जीव संसार-चक्र से मुक्त नहीं हुआ) चारों दिशाओं के चारों फैलावों में मनोरथ-रूपी धरों (कोष्ठकों) में बार-बार गिनकर (गोटी) लौटा लाता है (बार-बार नाना मनोरथ करके संसार में ही फँसा रहता है)। यह मूर्ख मन काम, क्रोध और मद के साथ बराबर खेल रहा है, पर हार नहीं मानता (उपरत नहीं होता) बालकों के विनोद के समान (जैसे चौपड़ देखने वाले बच्चों के समान आवेश में अटपटे व्यंग करते हैं, वैसे ही) बार-बार मुख से भलाई और बुराई के (मृदु-कठोर) वचन कहता रहता है। मानो प्रतिपक्षी के दाव को एक ओर टालकर (सांसारिक अभावों को एक बार कुछ पूरा करके) आठ, सात और दस अङ्क डालता है (आठों प्रहर, सातों द्वीपों में, दसों दिशाओं में सफलता पाने के लिये भटकता है)।*

सोलह युक्तियों से (सम्पूर्ण प्रयत्न से) सोलहों शृङ्गार से युक्त षोडशवर्षीय (युवती) के चित्त (मिज़ाज) को देखता है (उसकी कृपादृष्टि को जोहता रहता है), शय्या पर उसके साथ सोलहों अङ्गों से (सम्पूर्ण शरीर से) मिलता है, (यह स्त्री-सहवास ही) मानो (जुए में) सोलह अङ्क डालता है। पंद्रह अङ्क डालना पितृ-कार्य (पाँच ज्ञानेन्द्रिय, पाँच कर्मेन्द्रिय एवं रूप, रस, गन्ध, शब्द तथा स्पर्श के भोग से गर्भाधान-संस्कार करना) है, चौदहों भुवनों में जीव का भटकना चौदह का अङ्क डालना है, यह शर सदा संधान किया रहता है (जीव सदा भटकता ही रहता है)। रत्नों और स्वर्ण (धन) का लोभ तेरह का अङ्क डालना है (स्वर्ण-साधना की तेरहों युक्तियाँ अपनाना है)।

वार्धक्यसे सारा जगत बँधा है (सभी जीव एवं पदार्थ एक दिन बूढे होंगे), ऐसे (जीर्ण होते जगत् में) बारहों महीने (सदा) घूमना ही बारह का अङ्क डालना है। सन्मार्ग में रुचि नहीं है, यही मानो प्यादों का भय है; छका-पंजा (धोखा धड़ी) करके ग्यारहका अङ्क डालता है (दसों इन्द्रियों और मनको संसार में निमग्न रखता है)। नौ, दस और आठ में अङ्क डालना प्रकृति से प्राप्त नौ द्वारके शरीरको तृष्णा से (पाँच ज्ञानेन्द्रिय और पाँच कर्मेन्द्रियों के पोषण की लालसा से) सुख (आठों सिद्धियों की प्राप्ति) की इच्छा करना है। फिर सात घर मारना (सप्तद्वीपवती पृथ्वी को जीतना) चाहता है। पाँचशर कामदेव से पीड़ित हो पर-स्त्री में अनुरक्त होना ही पाँच का अङ्क डालना है, जिससे फिर 'सारि' मारी जाती (सफलता नष्ट होती) है। चबाउ-पर-निन्दा में लगना ही चारका अङ्क डालना है। संशयग्रस्त (जीव) की जिह्वा इसी (पर-निन्दा) रस में छकी रहती है और यही रुचि उसने धारण कर रखी है (परनिन्दा ही प्रिय लगती है और उसी में सदा लगा रहता है)।

सूरदासजी कहते हैं- बाल्य, कैशोर, तारुण्य एवं बुढ़ापा - ये चारों अवस्थाएँ चार गतियों के समान हैं, जिन्हें युगों से (अनादिकाल से) 'सारि' (गोटी) पकने के पास (चलने के स्थान पर) डालता है (मनुष्य-जीवन जो मोक्ष का द्वार है, उस अवसर की चारों अवस्थाओं को व्यतीत कर देता है), किंतु एक हरिनाम रूपी 'पौ' (भगवन्नाम के आश्रय) के बिना मनुष्य बार-बार बाज़ी हार जाता (मुक्त न होकर संसार में ही भटकता रहता) है।

▪▪▪▪▪▪▪▪▪▪▪▪▪▪▪▪▪▪▪▪▪▪▪▪▪▪